International Journal of Humanities and Social Science Invention
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 5 Issue 1 ||January. 2016 || PP.65-67

व्यंग्य: साहित्यिक अभिव्यक्ति या समाजधर्मा उपालंभ

डॉ. महेश चन्द्र चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
नारायण कॉलेज,शिकोहाबाद

सारांश
व्यंग्य एक समाजधर्मा साहित्यिक अभिव्यक्ति है, इसलिए उसका सीधा सम्बन्ध मानव–जगत् की दुर्बलताओं एवम् विकृतियों से है तथा उसकी सार्थकता एवं प्रयोजनशीलता ही उसके परिशोधन तथा परिहार में है। वस्तुतः व्यंग्य की यह प्रयोजनशीलता ही उसे हास्य से पूर्णतः पृथक् करती है। व्यंग्य एक चुभता काँटा है, जो वाणी–लेखनी के माध्यम से उत्पन्न होता है। परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए व्यंग्य एक उपयोगी आयुध का काम करता है। व्यंग्यकार समाज और शासन में व्याप्त अवगुणों–दुर्गुणों, दुराचारों, दोशों, मिथ्याचारों, पापाचारों, मूर्खताओं और भ्रश्टाचारों आदि पर तीक्ष्णप्रहार करता है। अपने स्वाभावगत आक्रोश, गाम्भीर्य एवं परिवर्तन कर डालने की क्षमता के सहारे व्यंग्य का प्रयोजन जर्जर, कलुशित आचरणों पर आघात कर उसमें सुधार करना होता है।

परिचय

अरस्तू के विचार के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के भीतर तद्युगीन परिस्थितियों के बीच जन्म लेता है, बड़ा होता है और अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है। जीवन की इस लम्बी दौड़ में कथित मानव को पल–प्रति–पल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवन के ऊपर परिस्थितियों का गहन प्रभाव होता है। इन परिस्थितियों में पड़ने के कारण मनुष्य की कुछ दुर्बलताएँ बन जाती हैं। व्यंग्यकार की पैनी दृश्टि मनुष्य की इन दुर्बलताओं को पकड़ लेती है। व्यंग्य रचना में मानवीय दुर्बलता का चित्रण एवं उपचार दोनों निहित रहते हैं।

व्यंग्य एक प्रकार की कथन शैली मात्र है। कुछ विद्वानों ने अंग्रेजी के 'सटायर' के लिए हिन्दी में विकृति, उपहास, व्यंग्य, व्यंग इन चार विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया है, तो कुछेक ने खिल्ली उड़ाना, ठट्टा, पैरोडी, उपहासात्मक स्वांग या नकल से ताने देने तक के कई रूप इस एक शब्द में भर दिये हैं। प्रो0 भट्ट ने तो उपहास, विडम्बना, अपकर्श, अतिशयता और वैदग्ध्य के प्रमुख साधनों से व्यंग्य की निमिर्ति घोषित की है। चाहे कुछ भी हो, लेकिन हिन्दी में व्यंग्य के लिए जितने साहित्य–प्रतिरूप हैं, शायद उतने अन्य किसी के साथ नहीं होंगे।

हमारी जिन्दगी की सच्ची विद्रूपताओं को स्वानुभव और प्रतिभा के अनुरूप अभिव्यक्ति देने में व्यंग्य चित्रकारों ने कुशलता से प्रयोग किए हैं। जैसे आर0के0 लक्ष्मण, मारियो, अबू अब्राहम, शंकर, नेगी, बाल ठाकरे, बेहरे, परब, सोनार आदि मुख्य हैं। व्यंग्य चित्रों में बम जैसी शक्ति होती है। यह सच है कि व्यंग्य चित्र एक ऐसी कैप्सूल है, जिसमें दस हजार शब्दों के बराबर की क्षमता निर्धारित है।

यह निन्दासूचक हास है, अतएव व्यंग्य का प्रतिरूप माना जाता है। उपहास में हँसी, ठट्ठा तथा दिल्लगी समाहित है। जहाँ सम्बद्धता दिखाई देती है, किसी व्यवहार में अगर बेसिलसिलापन दृष्टिपात हुआ, तब वहाँ उपहास निर्मित होता है। मराठी साहित्य में जितना भी व्यंग्य मिलता है, वह पूरा उपहास में समाहित है। यह सच है कि उपहास व्यंग्य का सबसे कड़वा स्वाद है। महाराष्ट्र में आमतौर पर इसका प्रयोग किसी व्यक्ति, समूह या वस्तु का मजाक कर उसे हीन या नीचता दिखाने के लिए काव्य में प्रयोग किया गया है। जिसे हम व्यंग्य कविता कहते हैं, उसे मराठी में उपहासात्मक कविता का संबोधन दिया है। इस प्रकार साहित्य में उपहास की योजना मीठे प्रहार के एवज में प्रत्यक्ष कड़वा प्रहार है। कहीं–कहीं पर उपहास साहित्य में प्रत्यक्ष गुस्सा या रोश प्रकट करने का एक साधन दिखाई देता है।

कटाक्ष–

कटाक्ष का अर्थ है–तिरछी चितवन, व्यंग्य, आक्षेप, टेढ़ी नजर आदि। कटाक्ष वह कथ्य है जो सपाट बयानी को एक उल्लेखपूर्ण आवेश की संदर्भगत आँच देकर तीखा प्रहार करता है। धारदार शब्दों में धारदार अर्थकटाक्ष में निहित है। कटाक्ष प्रस्तुति में तेज परिहास है, जो कुठाराघात कर फौरन आक्रोश में परिणत हो जाता है। कटाक्ष ऐसी भावभंगिमा है, जो काम हम हाथ से व्यवहार में नहीं कर सकते, वही काम केवल एक तिरछी नजर से सारा हेतु साध्य होता है, इतनी जादुई कटाक्ष में है। साहित्य में कटाक्ष का प्रयोग प्रवक्ता सहज आक्रोशजन्य स्थिति में कर लेता है।

खिल्ली–

स्वातंत्र्यपूर्ण काल में हास्य–व्यंग्य को एक तथा परस्पर पूरक समझा जाता था। अतः जहाँ–जहाँ व्यंग्य है, वहाँ–वहाँ हास या खिल्ली है। जो विसंगतिपूर्ण कार्यविधि हम सहज भाशा में नहीं कर सकते, उसी तथ्य को हम खिल्ली के साथ प्रस्तुत करते हैं। अतः साहित्य में व्यंग्य का प्रतिरूप खिल्ली माना जाता रहा। किसी विचित्र व्यक्ति की बिना

किसी हिचकिचाहट से मजाक को बार–बार उजागर कियाजाता है, उसे भी खिल्ली कहते हैं। खिल्ली उपहास, परिहास, उपरोध के साथ संकल्पित है। ये सारे खिल्ली के औजार हैं। आमतौर पर पारिवारिक तथा सामाजिक असंगतियों को प्रस्तुत करने के लिए वक्ता इसका इस्तेमाल करता है। हमारे परिवार में अगर कोई साला–साली, देवर–देवरानी, जेठ–जेठानी, बहनोई आदि है तो उनके दोश दिग्दर्शन हेतु खिल्ली प्रवक्ता का खुलेआम प्रयोग किया जाता है, जो व्यंग्य की प्रारम्भिक अवस्था है। संक्षेप में खिल्ली प्रवक्ता की उच्च भावना और अभिव्यंग्य की लाचार भावना का बेरोक–टोक किया गया संप्रेशण है। खिल्ली का ही ठिठोली प्रतिरूप है, जो सीमित परिहासात्मक प्रक्रिया है। आमतौर पर अनपढ़ लोग इसका प्रयोग अधिक करते हैं।

ताना–

ताना को काव्यशास्त्र में उपालंभ कहते हैं। नायक, नायिका, खलनायक या खलनायिका में से किसी के भी अनुचित व्यवहार के लिए दिया गया उलाहना ताना है। कविश्रेष्ठ सूरदास के भ्रमरगीत परम्परा की गोपियों ने उद्धव के साथ अपनी सारी बातचीत इसी धारा में सम्पन्न की। ताना ने भक्तिकाल से अब तक बहुत स्तरगत प्रगति की है। हमारे रोजमर्रा जिंदगी के सामाजिक उपालंभ को ताना संबोधन है। अब हिन्दी के कुछेक विद्वान् इसे व्यंग्य का निम्न रूप भले ही समझें, जबकि अपने पारिवारिक पड़ोसी, मित्र, परिजन रूप में यह व्यंग्य का श्रेश्ठ रूप है। अर्थात् बेशक ताना व्यक्तिगत आक्रोश तथा खीझ की बेबाक अभिव्यक्ति है। व्यंग्य साहित्य में ताना का उपयोग खुलकर किसी के भी साथ करते हैं, क्योंकि वह असंतोश तथा तकरार की भंगिमाओं का प्रस्तोता है।

वक्रोक्ति–

वक्र+उक्ति=वक्रोक्ति। वक्रोक्ति के ही टेढ़ा, बाँका, तिरछा, कुटिल नामाभिधान हैं। व्यंग्य में यही टेढ़ा, तिरछा, कुटिल, हनन चलता है। साहित्य में व्यंग्य कथन की इस टेढ़ी भंगिमा को वक्रोक्ति कहना ही समीचीन है। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार और उक्तिवैचिन्य के रूप में वक्रोक्ति बहुचर्चित सम्प्रदाय है। आचार्य कुंतक ने चर्चित कथन से भिन्न और वैदग्ध्यपूर्ण भंगिमा द्वारा प्रस्तुत उक्ति स्वरूप वक्रोक्ति को परिभाशित किया है। व्यंग्य के समकालीन संदर्भ में इसका अर्थसंकोच हुआ है और अब केवल यही कथन वक्रोक्ति कहा जा रहा है। वक्रोक्ति में बिच्छू के समान तीखी डंक समाहित है, जिससे प्रस्तुतकर्ता अपना लक्ष्य प्राप्त करता है। वक्रोक्ति में आक्षेपपूर्ण भंगिमा सम्मुख आती है। आमतौर पर इसका प्रयोग जो काम या जो हेतु सरल भाषा में नहीं हो सकता, लेकिन मन में क्रोध तथा द्वेष तो काफी होता है, जिसे उगलना तो चाहते हैं, किन्तु उसे व्यक्त करने में संकोच होता है, तब वहाँ वक्रोक्ति का प्रयोग होता है। यानी वक्रोाक्ति यह एक ऐसे बैद्यराज की दवा है जो मीठी तो लगती है, लेकिन अन्दर पूरी कड़वाहट है, जो मन का मैल साफ कर देती है। विशेषतः वक्रोक्ति में ऊपरी तौर पर प्रशंसा तो दिखाई देती है, लेकिन अंतरतम में निंदा–नालस्ती होती है।

वाग्वैदग्ध्य–

अंग्रेजी 'विट' के पर्याय में चमत्कारिक विनोद वचन, उक्ति–वैचिन्य, वाग्वैदग्ध्य, चतुरालाप, वाक्पटुत्व, तीक्ष्ण वैदग्ध्य तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि शब्दों का प्रयोग होता है। लेकिन इन सब में वाग्दैग्ध्य ही सर्वाधिक उपयुक्त है। वाग्वैदग्ध्य तथा व्यंग्य दोनों का स्वरूप, गुण, कार्य व्यापार एक जैसा ही है। वाग्वैदग्ध्य वाणी का वह करिश्मा है, जो शब्द तथा अर्थ की सम्मिलित विदग्धता के सहारे व्यंग्य की संवेदना को एक साथ प्रकट करता है। वाग्वैदग्ध्य माना तो सहज है, अन्यथा वह सोद्देश्य है। वाग्वैदग्ध्य में सत्य प्रस्फुटित होता है, जो सुनने तथा पढ़ने वालों को कटु अनुभावित करता है। व्यंग्य की संवेदना और करुणा को आत्मसात् करने वाला वाग्वैदग्ध्य शब्द एवं अर्थ दोनों ही स्तरों पर प्रभावित एवं चमत्कृत कर देता है, जिससे श्रोता या पाठक आग–बबूला हो जाता है। अतः इसका प्रयोग सोच समझकर, प्रसंग देखकर किया जाता है। इसका आखरी तथा अंतिम प्रयोग होने पर हाथापाई की नौबत आ जाती है। इतनी शक्ति वाग्वैदग्ध्य में है, जिसे सुनकर व्यक्ति तिलमिला जाता है, अस्वस्थ हो जाता है।

व्यंजना–

'अंजन' धातु में 'वि' उपसर्ग लगाने से व्यंजन शब्द की निर्मिति हुयी है। व्यंजना का अर्थ विशेष प्रकार का अंजन। जिस प्रकार आँखों में लगा हुआ अंजन दृष्टिदोश को दूर कर देता है, उसी प्रकार व्यंजना शब्दशक्ति शब्द के मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित कराती है। भारतीय भाषा–शास्त्रकारों ने व्यंजना शक्ति से प्रतीत होने वाले अर्थ को व्यंग्यार्थ कहा है। व्यंजना ही व्यंग्य का बीज माना जाता है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में व्यंजना पक्ष को देखते हुए ही लिखा है कि–

'विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।
स वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।।'

व्यंजना का सीधा रिश्ता व्यंग्य के प्रयोजन और अभिप्रेत संदर्भ से है। अर्थ की विविध छवियों को व्यंग्यकारों ने व्यंग्य भाषा की बनावट का अविभाज्य अंग बना दिया है।

इस प्रकार व्यंग्य मौजूदा सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, शैक्षिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक जीवन में प्राप्त विद्रूपताओं का सहज और निश्चल प्रतिबिम्ब है। सत्तातंत्र में फैली रिश्वत से लेकर साहित्य इलाके में व्याप्त गुटबंदी तक व्यंग्य की निगाह है।

भारतेन्दु काल, स्वातंत्र्यपूर्व काल तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल यानी लगभग 1850 से लेकर 1996 तक व्यवस्था के परखच्चे उड़ाने तथा उखाड़ने का काम व्यंग्य ने किया है। हमारी अनेक कुंठाओं का उद्घाटन व्यंग्य ने किया है, फलस्वरूप वह जनमानस में पैठ बना सका, लोकप्रिय हो सका। व्यंग्य क्रांतदर्शी और शाश्वत मूल्यों की वह कसौटी है, दृष्टि है जो सैकड़ों वर्षों के शोषण–दर्शन और कुसंस्कारों में बंधे मनुष्य को मुक्त करता है। अन्यथा आज भी वह केवल वोटर ओर उसकी जमातवर्ग बोट–बैंक के रूप में तौले जा रहे हैं।

हमारे देश के सम्मुख, राजनेताओं के सामने अनेकानेक समस्याएँ हैं, जैसे श्रीरामजन्मभूमि–विवाद, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश से कर्जा, भारत–पाक–बांग्ला–चायना संबंध, अखबारी कागज की कीमतों में श्रीबृद्धि, वासना कांड, शेयर्स कांड, राज्यों की समस्याओं में बढ़ोत्तरी, उपचुनाव आदि कई मुसीबतें आमंत्रित हैं और आम आदमी की समस्याएँ भी आम हैं– उसे पेयजल चाहिए, काम चाहिए, रोटी चाहिए एवं एक कुटिया का भी प्रबन्ध हो। व्यंग्यकार अपने व्यंग्य से इन ऊँचे, मध्यम एवं छोटे लोगों की समस्याओं को पहचान कर उचित प्रबन्ध के लिए प्रयत्नशील हैं। इन सबकी विपदाओं को राहत दिलाने का काम व्यंग्य करता है।

यह एक अहम मुद्दा है कि व्यंग्य की स्थापना तथा जनाधार उसकी अपनी पैनी धार के कारण विचारोत्तेजक नुकीलेपन से संभव हुआ है। यह सच है कि सभी व्यंग्यकार एक स्तर का, विचार का लेखन नहीं करते हैं, कहीं वे चालू व्यंग्य परोसते हैं, तो कहीं हल्की चिकोटियाँ भर लेते हैं, वे नश्तर बहुत कम अवसरों पर चलाते रहे हैं। मतलब यह कि परिवेश के अनुकूल वे अपना कार्यभार फैलाते या कम कर लेते हैं। जैसा है, उसके साथ वैसे मिलकर वे आगे बढ़ते हैं, यानी यहाँ व्यंग्य पानी के समान है, वही तथ्य व्यंग्य का है। वह न सदा कठोर होता है, न रहम भरा, इसलिए लोगों में व्यंग्य की पहचान तथा प्रियदर्शी रूप है।

व्यंग्य की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि इसमें देश–विदेश का असंगतिपूर्ण वृत्त होता है। दुनियादारी की खबरें समझती हैं, देश–विदेश की सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, व्यवहार का पर्दाफाश होता है, जिससे पाठक के मन में ज्ञान की श्रीवृद्धि होती है। साथ ही हम किस पथ पर हैं, व किस ओर जाते हैं, इस प्रकार की तुलना करके वह सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करता है। इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं से व्यंग्य अधिकतम भाता है।

सामाजिक चेतना की सर्वाधिक सक्षम तथा प्रभावशाली आक्रामक अभिव्यक्ति व्यंग्य है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक, प्रशासनिक विद्रूपों को व्यंग्य लेखक देखता है और दिखाता है, जो सारे दैनिक समस्याओं से जुड़े हैं। व्यंग्य में जो आक्रामकता होती है, वह निजी भड़ास या खुन्नस की अभिव्यक्ति नहीं होती है। हम कहीं भी अन्याय तथा उत्पीड़न देखते हैं, तो हमारे दिल में फौरन सहानुभूति उमड़कर आती है, जिससे अन्यायकर्ता के प्रति गहरा आक्रोश भी विकसित होता है। सीधी और खरी अभिव्यक्ति में व्यंग्य का प्रभाव अधिक अचूक होता है। इससे पाठक आकर्शित होते हैं। अतः व्यंग्य दिन–ब–दिन अधिक जनप्रिय हो रहा है।

साहित्य में व्यंग्य की लोकप्रियता बरकरार है, क्योंकि व्यंग्य का उपजीव्य समाज के सभी क्षेत्रों में विद्यमान असंगति, दोगलापन, दुराचार, बेईमानी, अत्याचार आदि हैं। समाज में जब तक ये सारे तत्व दिखाई देंगे, तब तक व्यंग्य फूलेगा, फलेगा, बढ़ेगा, इस स्थिति तक व्यंग्य का भविश्य उज्ज्वल है। विश्व व्यंग्य साहित्य तब तक दिन–दूना रात–चौगुना फूलेगा, बहेगा, बढ़ेगा, चढ़ेगा जब तक सतयुग का अवतार न हो।

सन्दर्भ सूची

1. पाण्डेय, रामखेलावन ;सम्पा0द्ध : हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ0 741
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : कबीर, पृ0 154
3. दीक्षित, प्रेमनारायण : हास्य के सिद्धान्त और आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0 59
4. चतुर्वेदी, बरसाने लाल : हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ0 42
5. झारी, कृश्ण देव : वीभत्स रस और हिन्दी साहित्य, पृ0 131
6. डॉ0 शान्तारानी : हिन्दी नाटकों में हास्य तत्व, पृ0 73
7. फुरक़त, गुलाम अहमद : तंजो मजाह, पृ0 17–18
8. खत्री, एम0पी0 : हास्य की रूप रेखा, पृ0207
9. हरिशंकर परसाई : सदाचार का ताबीज, पृ0 10
10. मेंहदीरता, वीरेन्द्र : आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, पृ0 15
11. गर्ग, शेरजंग : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ026
12. हरिशंकर परसाई : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ;2 अप्रैल 1967द्ध, पृ0 8
13. तिवारी, बालेन्दु शेखर : हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृ0 65